IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# उत्तराती के व्यंग्य साहित्य में नारी की फै शान परस्ती एवं आभूशण प्रियता

**डॉ0 ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह**

असिस्टेंट प्रोफेसर

रजत पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ

नारी के श्रृंगार, आभूशण प्रेम व फै ान–परस्ती पर भी व्यंग्यकारों ने निगाह रखी है– दर्पण में अपनी रूप–रा ि ा का अवलोकन करते रहना नारी की कमजोरी होती है– 'सुबह उठकर हाथ मुंह धोये नहीं कि वह आईने के सामने जाकर खड़ी हो जाती हैं। आईना पुरुशों की भांति धूर्त होता है। वह अपने सामने पुरुश को इतना खड़ा नहीं रहने देता, जितना औरत को। उसे बदसूरत औरत भी प्यारी लगती है।[1] नारियों के बनाव श्रृंगार को पुरुशों के प्रति ाड़यंत्र मानते हुए व्यंग्यकार लिखता है– 'लगता है, ये औरतें चाहे जवान हों, या न हों, इन्हें पुरुशों के मॉरल से दु मनी है। तभी तो अपनी उम्र का ख्याल किये बिना ये ऐसी सजती–संवरती हैं। लगता हैं पुरुशों के मॉरल के खिलाफ ाड़यंत्र ही रचती है।'[2]

लड़कियाँ फै ान के पीछे दीवानगी की हद तक चली जाती है– 'यें लड़कियाँ फै ानेबुल थीं और बेवकूफ थीं और पता नहीं क्यों, रोज खरीदते रहने पर भी उन्हें कपड़ों की हमे ा कमी बनी रहती थी।'[3] 'गोपी दही बेचने चली' नामक रचना में साड़ियाँ कहती हैं– 'तुम्हारी सारी योग्यता हममें समायी हुई है– साड़ियों में। साड़ी से बढ़कर कहीं कोई योग्यता होती है।'[4]

'ब्यूटी पार्लर' की दौड़ लगाकर नारी ने अपने प्राकृतिक सौंदर्य को खो दिया है। व्यंग्यकार ब्यूटी–पार्लर को 'रूप की पूंजी के बैंक' की संज्ञा देता है, और एक ऐसे प्रेमी का वर्णन करता है जो अपनी प्रेमिका रमा से मिलने उसके घर जाता है। वहां उसका सामना एक नारी से होता है। थोड़ी बातचीत के बाद जब वह महिला अंदर चली जाती है तो वह नौकर से कहता है– 'भाई हमें रमा जी से मिलना था माँ जी से नहीं। रमा जी को बुला दो अंदर से। तो जानते हो नौकर ने क्या कहा वह बोला अभी आप रमा जी की माँ जी से नहीं खुद रमा जी से ही तो बात कर रहे थे। पहचाना नहीं आपने उन्हें ? कैसे पहचानोगे। पिछले कुछ दिनों से भाहर के सभी व्यूटी–पार्लर हड़ताल पर जो हैं।'[5]

## आधुनिक–सभ्यता

पि चम के अंधानुकरण के कारण हमारा दे ा फै ान–परस्ती, अनु ाासनहीनता, अमर्यादित, उच्छश्रृंखल व्यवहार आदि का ि ाकार हुआ है। आधुनिकता हमारी दृश्टि में, वैज्ञानिक सोच में, न आकर हमारी अतृप्त दमित वासनाओं और स्वच्छन्द भोग की लालसाओं के पर्याय रूप में आई। पा चात्य–रहन, सहन, विदे ाी वस्तुओं के प्रति आकर्शण और अंग–प्रद र्ान, उन्मुक्त यौन–सुख–भोग की इच्छा आदि को ही हमने आधुनिकता मान लिया। 'जिन्दगी को कुरेदती कला' नामक रचना में भारद जो ाी इस आधुनिकता की व्याख्या करते हुए लिखते हैं– 'आदमियों की रूचियां अपार हो रही हैं। वह किस चीज को कला के रूप में अपना ले, कहना कठिन है। उपेक्षित सूखी डालियाँ ड्रांइंग–रूम के डेकोरे ान–पीस बन जाती हैं, गंवारों की लुंगी आधुनिकता का प्रतीक बन गयी, गले खुल गए, कमर खुल गयी और साड़ियां विचित्र नाभिद र्ना भौली से बांधी जाने लगी। मैं तो आजकल उन बड़े–बड़े च मों पर मोहित हो रहा हूँ। आदमी की दृश्टि संकीर्ण होती जा रही है और च मा बड़ा होता जा रहा है, यही क्या कम है।'[6] 'आधुनिक लड़की की पीड़ा' में नरेन्द्र कोहली आधुनिका नारी के जीवन की विसंगतियों को चित्रित करते हैं।

आधुनिक–सभ्यता में 'फै ान– ो' और 'ब्यूटी–काम्पटी ान' की धूम मची है। सौन्दर्य–प्रतियोगिताओं के छद्म तले नारी के देह की नुमाई ा कर स्वार्थ साधनों की वृत्ति भी आज दिखाई देती है। एक ऐसी निरीह नारी के सौंन्दर्य प्रतियोगिता में 'ब्यूटी–क्वीन' चुने जाने पर व्यंग्य करते हुए श्री रवीन्द्रनाथ त्यागी 'सौन्दर्य स्वयंवर कुछ प्र न' में लिखते हैं– 'प्रभु ने उसे ऐव र्य तो प्रदान किया, मगर छप्पर फाड़कर नहीं ब्लाउज फाड़कर।'[7] कुत्ते पालना, विदे ाी–वस्तुओं की लालसा, आकर्शक पार्टियां, दिखावा, अग्रेजियत का मोह, गिफ्ट, क्लब, आदि बातें भी आधुनिकता के प्रभाव से हमारी समाज–व्यवस्था में आ रही हैं। इनकी पड़ताल भी व्यंग्यकारों ने की है।

## उच्च–वर्ग बनाम नैतिकता का ध्वंस

भारतीय समाज व्यवस्था राजाओं और सामंतों के चंगुल से मुक्त होकर उच्च वर्ग के अधीन हो गई हैं। उच्च–वर्ग में समाज का नव–धनाड्य वर्ग और आधुनिक अफसर वर्ग भाामिल हैं, जो एक ओर सामंती–संस्कारों से ग्रसित हैं तो दूसरी और पा चात्य सभ्यता की अंधी दौड़ व भोग से पीड़ित। उत्तर ाती के हिन्दी व्यंग्यकार इस वर्ग के प्रति अपनी संचित घृणा को संपूर्ण उदारता के साथ अर्पित करता है।

'अज्ञेय' कुछ 'वर्गवाद' नामक रचना में उच्च वर्ग के भवान प्रेम पर प्रहार करते हुए लिखते हैं– 'जो मनुश्य को अपना प्यार नहीं दे सकते वे इसी पर इतराते हैं कि हम कुत्ते से इतनी मुहब्बत करते हैं।'[8] कुत्ते के जन्मदिन भी मनाए जाते हैं और पार्टियां भी दी जाती है– 'अच्छा ये बाताओ पार्टी है किस उपलक्ष्य में।' मैंने कहा 'रिंकू का द्वितीय जन्म दिवस है।'

श्रीमती फिर बोली– 'हाय रे! क्या जमाना आ गया है। लोगों को मकान नहीं मिलता। कुत्ते कार में चलेंगे। आदमी कुलियाँ, गलियों में वर्शा ऋतु काटते हैं, कुत्ते पलंग पर सोते हैं। मजदूरनें घर पर अकेला बच्चा छोड़कर खेत काटने जाती हैं। कुत्ते की अर्दली में दो–दो नौकर रहते हैं। खाद्यमंत्री अन्न की बचत के लिए रा ान कोटे में कटौती करेंगे। किन्तु कुत्ते की पार्टी में दो हजार लोगों को खाते हुए देखेंगे।'[9] व्यंग्यकार कुत्ते द्वारा अनेक लोगों पर व्यंग्य प्रहार करता है। कुत्ते को सुबह– ाम घुमाने ले जाना भी बड़प्पन का घोशणा–पत्र है। इस पर कटाक्ष करते हुए व्यंग्यकार कहता है– 'राजा के पीछे–पीछे उसका पिल्ला उठाये चलने वाला कोई कंचुकी होता है तो कुत्ते के पीछे–पीछे उसकी सांकल संभाले चलने वाला भी कोई होता ही है।'[10]

'डिनर संस्कृति' भी उच्च–वर्ग की भाान है। यह पार्टियां जहां एक ओर बड़े अधिकारियों को व्यापारियों और छोटे अधिकारियों द्वारा पटाने–प्रसन्न करने का साधन बनती हैं अधिकारी वर्ग मुर्गे फंसाते हैं, यदि मंत्री आमंत्रित हुए तो अपना प्रमो ान ट्रांसफर का जुगाड़ भिड़ाते हैं, तो दूसरी ओर उनकी पत्नियां अपने मनोरंजन का सहारा खोज लेती हैं। व्यभिचार के साधन जुटाए जाते हैं। इस प्रकार चापलूसी, मक्कारी, स्वार्थ–साधन और व्यभिचार के केन्द्र होते हैं ये भव्य भोज। रवीन्द्रनाथ त्यागी अपनी 'डिनर' नामक रचना में इसका लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हैं। पार्टी में भाराब के बहते प्रवाह और प्रभाव देखकर व्यंग्यकार का मन पीड़ा से भर जाता है– 'मैं सोचता रहा कि दे ा में सूखाग्रस्त क्षेत्रों में भाराब की सिंचाई क्यों नहीं की जाती ? अगर भाराब अफसर, समाजसेवक और कलाकार पैदा कर सकती है तो क्यों बाजरा और चावल पैदा नहीं कर सकती हैं?'[11]

नरेन्द्र कोहली ने 'द लाईफ' नामक रचना में उच्चाधिकारियों के भायन–कक्ष, रसोई, अंतरंग व बाह्य परिवे ा, जीवन में होने वाले घटनाक्रमों उनकी निकृश्टताओं और 'स्कैस स्केण्डलों' आदि का प्रामाणिक चित्रण किया है।

'नौकर कहता है, कौन हरामी नहीं है मेरी जान! तुम नहीं हो या मैं नहीं हूँ– या हमारे साहब नहीं हैं ? आया स्वीकार करती है, 'हाँ हम सब हरामी हैं।'[12]

उच्च–वर्ग दिखावे और प्रद ान में वि वास करता है। झूठा बड़प्पन उसने ओढ़ रखा है और अपने इर्द–गिर्द एक ऐसी दीवार खड़ी कर रखी है जिसे भेदकर कोई अंदर न आ सके– 'कॉन्वेन्ट में जाने वाले बच्चे ने पिता से पूछा– 'डैडी ये प्रेमचन्द कौन हैं, जिसकी जयंती मनायी जाती है ?'

सुनकर पिता ने बच्चे की मम्मी से कहा– 'बच्चा इधर–उधर के बच्चों में जाने लगा है क्या ? जरा उस पर नजर रखा करो।'[13]

उच्च–वर्ग की बेईमानी, भ्रश्टाचार, अनैतिकता घूसखोरी, अंग्रेजियत भाराबखोरी आदि को व्यंग्यकारों ने व्यंग्य का विशय बनाया है।

## नाक की प्रतिश्ठा

उच्च–वर्ग के सान्निध्य से मध्यम वर्ग के अंदर भी कुछ लालसायें जागी हैं। उसकी अपनी सीमाएं, विव ाताएं और संस्कार थे– परिणामतः वह उच्चवर्ग के साथ 'एडजस्ट' न हो सका, किन्तु अपने आधार को छोड़ देने के कारण वह अपने वर्ग से भी कट गया। दुहरी पीड़ा का सामना उसे करना पड़ा, क्योंकि वह कहीं भी समरस हो पाने की स्थिति में न था। उच्च–वर्ग ने उसे प्रतिस्पर्धा की दौड़ में खड़ा तो किया किन्तु दौड़ पाने योग्य ताकत उसमें न थी– 'आजादी के बाद भारतीय मध्यम वर्ग खासतौर से इस प्रतियोगिता का ि ाकार हुआ। उसे इस पचड़े में फंसाकर क्या मिला? डाइनिंग टेबुल, फ्रिज, टू–इन–वन, टी0 वी0 डनलपपिलों, ठण्डी बीयर, फर्स्ट क्लास में यात्रा, इम्पोर्टेड साड़ी और बु ा र्ट, कॉन्वेन्ट के उच्चारण में बोलने वाली औरत जो बाहर समाज में माधुर्य बिखरेती है और घर में छोटी बातों पर तनाव उत्पन्न करती है। पार्टियां, चरित्रहीन लोगों से दोस्ती करने की मजबूरी। उसके सिर पर पड़ी दहेज की प्रथा, महंगी भादियां, बहुओं का जलना, बच्चों का पतन, अपने समाज से कटना, माँ–बाप से दूरी और नफरत, बॉस की हद दर्जा खु ामद, मेहनत के बावजूद निरंतर असुरक्षा, बीमारी, हार्ट अटैक, नींद के लिए गोलियां, स्वाभिमान का अंत, बढ़ते अपराधों को सहन करना और उसके ि ाकार होना, ब्लैक और चोरी से कमाई, निरंतर बेईमानी सामान घर पर न होने की अकुलाहट सास–बहू का खिंचवा, न ाा।'[14] भारद जो ाी ने अपनी रचना 'डिब्बे में बैठे लोग' में मध्यम–वर्ग क वि ोशताओं को बखूबी उभार दिया है।

नरेन्द्र कोहली की रचना 'पाथेय' भी मध्यम–वर्ग के अभाव, पीड़ा, दंभ, महत्वाकांक्षाओं और उसकी पूर्ति के अभाव से उत्पन्न नैरा य कुण्ठा आदि को सटीक अभिव्यक्ति देती है।

मध्यम–वर्ग, उच्च–वर्ग से प्रतिस्पर्धा करना चाहता है, उसकी नकल करना चाहता है, 'हम लोग जमीन पर बैठकर खाते हैं, किन्तु पार्टी जमीन पर देने में हमारी नाक दो मिलीमीटर झुक जाती है।[15]

मध्यम–वर्ग के साथ वह 'नाक' बड़ी बेहयाई से पीछे पड़ी है। जरा–जरा सी बात में उसकी नाक जाती है। 'नाक कट तो जाती है, परन्तु मालूम नहीं कटकर जाती कहां है– कटकर वह जमीन पर गिरती है या आसमान में छू–मंतर हो जाती है। जिसकी नाक कटती है वह अपनी व्यथा किससे कहे? पड़ोसियों को मुफ्त का मसाला मिल जाता है, जो किसी चना–जोर गरम से कम नहीं होता।'[16] श्री हरि ंकर परसाई 'दो नाक वाले लोग' नामक रचना में लिखते हैं– 'मेरा ख्याल है, नाक की हिफाजत सबसे ज्यादा इसी दे ा में होती है।'[17] स्मगलिंग के अपराध में पकड़े जाने पर अपराधी को बाजार से जाते हुए देखकर व्यंग्यकार कहता है– 'लोक नाक काटने को उत्सुक है। पर वे नाक को तिजोड़ी में रखकर स्मगलिंग करने गये थे। पुलिस को खिला–पिलाकर बरी होकर लौटेंगे और नाक फिर पहन लेंगे। जो बहुत हो ियार है, वे नाक को तलवे में रखते हैं। तुम सारे भारीर में ढूंढ़ो, नाक ही नहीं मिलती।' प्रतिश्ठा के दंभ और प्रतिश्ठा के दिखावे की मध्यवर्गीय व्यक्ति की मानसिकता पर परसाई 'मेरी अक्ल का बाल' नामक रचना द्वारा व्यंग्य करते हैं।[18]

मध्यम–वर्ग में भी उच्च–वर्ग के संसर्ग से चरित्र का संकट आया है। अब सामाजिक– ील का ध्वंस होने लगा है– 'आजकल तो प्रेमी–प्रेमिकाओं के बीच भी भाई–साहब और बहन जी कहने की प्रथा चल पड़ी है। बल्कि कई लड़कियां तो अपने प्रेमियों को चाचाजी कहती भी पाई गयी।'[19]

## विदे ी प्रेम की मानसिकता

उत्तर ाती में विराट–वि व के साथ भारत के संबन्धों ने भारतीय नागरिकों के लिए विदे ा–भ्रमण के अधिक अवसर प्रदान किए। मंत्री, प्रतिनिधि मण्डल, खिलाड़ी, सांस्कृतिक आदान–प्रदान और उच्चाधिकारियों के प्रि ाक्षण–भ्रमण के भाासकीय दौरों द्वारा भारतीयों को प्रवास के अधिक अवसर मिले। अपने दायरों से बाहर निकलकर उन्मुक्त आका ा तले जब भारतीय व्यक्ति ने पा चात्य जगत् की विलासितापूर्ण तड़क–भड़क देखी, तो वह अपनी सुध–बुध खो बैठा। अच्छाइयों को उसने किस सीमा तक ग्रहण किया, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु ढेर सारी बुराइयों से समाज और राश्ट्र भर गया। तीर्थ यात्रा से लौटने वाले व्यक्ति के स्वागत की जैसी मानसिकता मध्यकालीन धर्म–धारणा वाले समाज में थी, वैसे ही जो ा, आदर और सम्मान से फारेन रिटर्न व्यक्ति का स्वागत किया जाने लगा। इसका सुफल यह हुआ कि गांधी जी ने विदे ी–वस्तुओं के बहिश्कार द्वारा भारतीयता के प्रति प्रेम की जो भावना जगाई थी, वह समाप्त हो गयी। 'मेड इन इण्डिया' वस्तुओं का रचना पिछड़ेपन का प्रतीक माना जाने लगा। भीश्म साहनी, ने अपनी कहानी 'मेड इन इटली'[20] में इस स्थिति का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है। उत्तर ाती के व्यंग्यकारों ने इस मानसिकता को अपने व्यंग्य का विशय बनाया है। नरेन्द्र कोहली की 'अमरीकन जांघिया' नामक रचना के माथुर साहब अपने जांघिए के प्रद नि के लिए नंगे तक होने में संकोच नहीं करते। वह लंगूर की तरह लाल जांघिए का प्रद नि करते फिरते हैं– 'उन्होंने अपने लाल जांघिये को बड़े प्यार से सहलाया, कहा, हमारी एम्बैसी के मिस्टर किथनिक अमरीका लौट रहे थे। अपना सामान वे ले जाना चाहते नहीं थे। उन्होंने अपनी चीजों की नीलामी की उसी में से ले लिया।'[21] पहनने के साथ–साथ खानपान आदि दैनिक व्यवहार की वस्तुओं में भी विदे ी–वस्तुओं के पागलपन का दौर है, तभी तो व्यंग्यकार कह उठता है– गेहूँ हैं तो अमरीका से रेडीमेड चला आ रहा है। आदत नहीं पड़ गई रेडीमेड चीजों की तो और क्या ? भिखमंगे कहीं के।'[22] डॉ0 कोहली इस गुलाम मानसिकता से इतने क्षुब्ध हो जाते हैं कि 'हिन्दी का सबसे अच्छा भाब्दको ा भी एक विदे ी कामिल बुल्के ने बनाया।'[23] कहकर व्यंग्य करते हैं।

डॉ0 नरेन्द्र कोहली तो वे अंग्रेजी में सोचते'[24] कहकर इस गुलाम मानसिकता पर निर्मम प्रहार करते हैं। धनंजय चौधरी विदे ा–प्रेम, अंग्रेजी–प्रेम और निम्न वर्गीय व्यक्ति द्वारा अंग्रेजी स्कूल में बच्चे पढ़ाने की मानसिकता आदि पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं– 'भारत में जहां अधिकां ा लोग अपने घर से खण्डवा तक जाने का किराया नहीं जुटा पाते, उनके लिए इस वि वभाशा का साथ जरूरी समझा गया है। क्या पता, झुनिया के नंगे बच्चों को कब विदे ा जाना पड़े तब यदि उन्हें अंग्रेजी नहीं आई तो वह दे ा के लिए भार्म की बात होगी।'[25]

## मूढ़–मान्यताओं पर प्रहार

स्माज की प्रगति में बाधक मूढ़–मान्यताओं और रीति–रिवाजों को युगानुकूल परिवर्तित किया जाना चाहिए था। ऐसा लगता है आजादी के बाद जो जहाँ है उसने वहीं अपनी जड़े ज्यादा मजबूती से गहरे तक जमाई हैं। जाति–वाद राजनीति के कारण पनपा–बढ़ा तो दहेज जैसी बुराइयां सामाजिक स्टेट्स में अर्थ की प्रभुता के कारण बढ़ीं। थोथे बड़प्पन ने तड़क–भड़क और वैभव–प्रद नि का मार्ग प्र ास्त किया। उत्तर ाती का हिन्दी व्यंग्यकार इस दि ाा में जागरूक और संघर्शरत रहा है।

## जाति–भेद और छूआछूत

भारतीय संविधान द्वारा छुआ–छूत और जातिगत भेद–भाव की समाप्ति का उद्घोश किया गया, किन्तु व्यवहार मे उसके विपरीत आचरण ही दिखाई देता है– 'संविधान एक कविता का नाम है जिसके अनुच्छेद 17 में छुआछूत खत्म कर दी गई क्योंकि इस दे ा में लोग कविता के सहारे नहीं, बल्कि धर्म के सहारे रहते हैं, छुआछूत इस दे ा का एक धर्म है।'[26]

श्रीलाल भुक्ल जाति–प्रथा की कट्टरता का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ' ाास्त्रों में भूद्रों के लिए जिस आचरण का विधान है उसके अनुसार चौखट पर मुर्गा बनकर उसने वैद्य जी को प्रमाण किया। इससे प्रकट हुआ कि हमारे यहां आज भी भाास्त्र सर्वोपरि है और जाति–प्रथा मिटाने की सारी कोि ा ें अगर फरेब नहीं हैं रोमाण्टिक कार्रवाइयाँ हैं।'[27]

जाति–भेद की समाप्ति के जितने नारे बुलंद हुए उतनी ही तेजी से उसने अपनी जड़े जमाई। अि ाक्षित ग्रामीणजन ही नहीं पढ़े–लिखे विद्वान भी इस जाति व्यवस्था की जड़ता के सम्मुख नतसिर हैं।

जातिवाद की इस जड़ता को लक्ष्य कर हरि ांकर परसाई लड़के–लड़की के प्रेम को माध्यम बनाकर उनके विजातीय अभिभावकों के संवाद द्वारा इस स्थिति पर तीक्ष्ण व्यंग्य करते हैं– 'लड़के–लड़की बड़े हैं, पढ़े–लिखे हैं, समझदार हैं। उन्हें भाादी कर लेने दो। अगर उनकी भाादी नहीं हुई तो भी वे चोरी–छुपे मिलेंगे और तब जो उनका संबन्ध होगा, वह तो व्यभिचार कहा जायेगा।

जाति की बैसाखी के सहारे नौकरी प्राप्त करने में ज्यादा सुगमता होती है–

'एक व्यक्ति नौकरी के लिए आयोग का आवेदन–पत्र भर रहा था। वि ोश योग्यता वाले कॉलम में उसने लिखा–मैं अध्यक्ष महोदय की ही जाति का आदमी हूँ।'

और उसकी नियुक्ति हो गयी।'[28]

नौकरी ही नहीं ऊँचे–पद और सम्मान भी लोग जातिवाद की सीढ़ी के सहारे प्राप्त करते हैं, हाँ इतनी सावधानी भी अपेक्षित है कि 'गैर बिरादरी वाला अगर कुएं में गिर रहा हो तो तब उसे सावधान करने की जरूरत नहीं।'[29]

इस जाति–बंध को यदि कोई तोड़ सकता है तो वह है केवल 'धन' की ताकत। हरि ांकर परसाई की एक रचना 'कप्तान साहब' का एक उदाहरण इस संबन्ध में वि ोशतः द्रश्टव्य है–

'कप्तान साहब कुलीन ब्राह्मण थे और रायसाहब कायस्थ। पर धन की एक जाति होती है। अपनी कुलीनता की बंसी के कांटे में पुत्र रूपी केचुआ लगाकर वे रायसाहब के परिवार के पानी में डाले रहे। और आखिर मछली फंसी। एक दिन सुना गया कि कप्तान साहब के पुत्र का प्रेम रायसाहब की पुत्री से हो गया।'

एक दिन वह लड़की कप्तान साहब की बहू बनकर आ गयी और उसके साथ ही आ गयी रायसाहब की माँ– याने माता लक्ष्मी धन की देवी।

लड़की कुरूपा थी। लड़के को पसंद नहीं थी पर उसका धन बाप–बेटे दोनों को खूब पसन्द था। बेटे ने सोचा, करोड़ो की सम्पति आ जाएगी। अगर एक कुरूपा घर में पड़ी रही तो क्या बिगड़ता है? भीला, लीला, जमना बगैरह तो है।'[30]

धन की तरह पद व राज्य– ाक्ति के भय से, इस जाति व्यवस्था की कठोरता को ि ाथिल करने वाले अवसरवादियों पर 'कप्तान साहब' नामक रचना में परसाई व्यंग्य करते हैं, 'ि ावप्रसाद को जो लोग पलंग पे बिठाने को तैयार नहीं थे क्योंकि वह कप्तान साहब का निर्धन व तिरस्कृत भतीजा था, और कप्तान साहब कुजात घोशित कर दिए गए थे। कप्तान साहब के आते ही थाली में कप्तान साहब के पैर धुलाकर पलंग पे बिठाने को तैयार हो जाते हैं।'[31]

## विवाह की औपचारिकताएं और फिजूलखर्ची

यह निर्विवाद है कि खर्चीली– ाादियां मनुश्य को दरिद्र और बेईमान बनाती है। दूसरों की नकल और अपनी झूठी प्रतिश्ठा के लिए व्यक्ति अंधाधुंध धन खर्चा करता है, और उसकी पूर्ति हेतु अपना सर्वस्व होम कर देता है। इस तरह अपने दुर्भाग्य को वह स्वयं आमंत्रण देता है। उसके परिचित उसकी आर्थिक व सामाजिक–स्थिति से वाकिफ होते हैं, फिर भी एक दिन के लिए वस्त्र–आभूशणों की प्रद ानी लगाई जाती है, और बड़े धूम–धाम से भाादी की रस्म पूरी की जाती है। भव्य–भोज ओर आति ाबाजी में, लाईट, बैण्ड और भाहनाई में तथा भाो–सजावट में, अपने पसीने की गाढ़ी कमाई को नश्ट होता देखकर वह अजीब आनंद का अनुभव करता है। अपव्यय के साथ कुल रीतियों के नाम पर कुप्रथाओं का निर्वाह किया जाता है। लड़के–लड़की दिखाने वाले बिचौलिए झूठ का ऐसा पहाड़ खड़ा कर देते हैं कि आप सिर धुन लें।

हरि ांकर परसाई 'दो नाक वाले लोग' नामक रचना में विवाह–आडम्बरों में मितव्ययिता को नाक कटना कहने वालों पर प्रहार करते हैं। किसी विव ाता या स्वेच्छा से अंतर्जातीय विवाह रचाने वाले भी भाादी की टीम–टाम और धूम–धाम से बाज नहीं आते–

'मैं उन बुजुर्ग समझा रहा था, आपके पास रुपये हैं, नहीं, आप कर्जा लेकर भाादी का ठाठ बनायेंगे। पर कर्जा चुकायेंगे कहां से ? जब आपने इतना नया कदम उठाया है कि अंतजार्तीय विवाह कर रहे हैं तो विवाह भी नए ढंग से कीजिए।

वे कहने लगे, 'नहीं जी रि तेदारों में नाक कट जायेगी।'[32]

'पत्थर की लकीर' नामक रचना में कृश्ण चराटे लड़की देखने–दिखाने और उस अवधि के प्र नोत्तरों को अपने व्यंग्य का विशय बनाते हैं। बारात की तड़क–भड़क देखते ही बनती है। बारात के नाच–गाने, रो ानी के फिजूल खर्चों का सटीक वर्णन मनोहर याम जो ाी ने 'नेताजी कहिन' नामक रचना में आज हमरे इयार की भाादी है' भीर्शक में किया है। 'लोग इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उनके यहां ब्याह– ाादी में इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति आते हैं कि उनके समझ में स्वयं महत्वहीन बन जाते हैं। उनका यही

रह जाता है कि जब हमारे लायक भतीजा जैसा कोई विचौलिया उन्हें वी0 आई0पी0 के सामने परिचय कराने लाये तो वे हाथ–जोड़कर खड़े हो जायें ओर कहें आप आये, बहार आयी।

'यह कह सकना कठिन था कि यहाँ गोविन्द और गीता का विवाह हो रहा है या सत्ताओं में बिचौलियों के माध्यम से सौदे–समझौते हो रहे हैं।

'वी0आई0 पी0 चक्कर में दुल्हा–दुल्हन, रीति–रिवाज सब उपेक्षित हुए जा रहे हैं। दुल्हा–दुल्हन फिल्मी सैट मंच पर बैठे हैं और भाादी का मतलब यही रह गया कि बस औपचारिकतायें निभाई जा रही हैं।

## सन्दर्भ –


1 शंकर पुणतांबेकर : विजिट यमराज की, पृ0 98
2 वही, पृ0 65
3 श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ0 294
4 शंकर पुणतांबेकर : विजिट यमराज की, पृ0 99
5 कृष्ण चराटे : साहब का टेलीफोन, पृ0 59
6 शरद जोशी : रहा किनारे बैठ, पृ0 88
7 रवीन्द्रनाथ त्यागी : फूलों वाला कैक्टस, पृ0 56
8 स0 ही0 वात्सायन अज्ञेय : सब रंग और कुछ राग, पृ0 75
9 श्रीराम ठाकुर दादा : पच्चीस घण्टे, पृ0 135
10 अज्ञेय : सब रंग और कुछ राग, पृ0 77
11 रवीन्द्रनाथ त्यागी : अतिथि कक्ष, पृ0 64
12 डॉ0 नरेन्द्र कोहली : पांच एब्सर्ड उपन्यास, पृ0 47
13 डॉ0 शंकर पुणतांबेकर : विजिट यमराज की, पृ0 174
14 शरद जोशी : यथासंभव, पृ0 63
15 श्रीराम ठाकुर दादा : पच्चीस घण्टे, पृ0 17
16 सुदर्शन मजीठिया : डिस्को कल्चर, पृ0 136
17 परसाई रचनावली : भाग–एक, पृ0 272
18 वही
19 कृष्ण चराटे : साहब का टेलीफोन, पृ0 148
20 भीष्म साहनी : शोभायात्रा, पृ0 35–41
21 डॉ0 नरेन्द्र कोहली : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ0 99
22 डॉ0 नरेन्द्र कोहली : एक और लाल तिकोन, पृ0 44
23 डॉ0 नरेन्द्र कोहली : जगाने का अपराध, पृ0 143
24 डॉ0 नरेन्द्र कोहली : जगाने का अपराध, पृ0 88
25 धनराज चौधरी : गौतम बुद्ध और एक दुःखी आत्मा, पृ0 62
26 श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ0 100
27 श्रीलाल शुक्ल : राग दरबारी, पृ0 33
28 श्रेष्ठ लघु व्यंगय (संपा0) डॉ0 बालेन्दुशेखर तिवारी, पृ0 30
29 हरिशंकर शर्मा : गड़बड़ गोष्ठी, पृ0 45
30 परसाई रचनावली, भाग–दो (सपा0) कमला प्रसाद, पृ0 243
31 परसाई रचनावली, भाग–दो (संपा0) कमला प्रसाद, पृ0 244–45
32 हरिशंकर परसाई : मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, पृ0 126